बिहार के सीमांचल क्षेत्र के दलित एवं महादलित समुदायों में सामाजिक गतिशीलता: एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

Vikram Kumar
LDC (Counter Clerk), Forbesganj College, Forbesganj , Purnea University, Purnia
E-mail id- kumarvikram0609@gmail.com

Abstract: नई सामाजिक-आर्थिक शक्तियों के प्रभाव में, दलित तीन प्रमुख परस्पर संबंधित कारकों का सामना कर रहे हैं:पहचान से संबंधित मुद्दे; आधुनिकीकरण के कारण आधुनिक मूल्यों के संपर्क में आने से उनके अस्तित्व, आत्म-पहचान और आपसी समायोजन की समस्या में वृद्धि हुई है। सुरक्षा की समस्या; सामाजिक विकास और समाज के सदस्यों के बीच सौहार्दपूर्ण संबंधों की तीव्रता पर निर्भर करती है। समानता से संबंधित मुद्दे; विकास उपायों का वितरणात्मक न्याय और आर्थिक विकास के लाभों से वंचित होना। ये मुद्दे जटिल तरीकों से आपस में जुड़े हुए हैं और ग्रामीण बिहार की सामाजिक गतिशीलता की दिशा निर्धारित करते हैं। बिहार राज्य ने पिछले कुछ दशकों में महत्वपूर्ण विकास हासिल किया है; सामाजिक एकजुटता में वृद्धि और अस्पृश्यता प्रथाओं में कमी के साथ, जो काफी हद तक सामाजिक न्याय आंदोलनों के कारण है। राज्य महत्वपूर्ण मानव विकास संकेतकों में सुधार कर रहा है। लेकिन सभी सामाजिक समूहों को विकास प्रक्रिया के लाभ समान रूप से नहीं मिले हैं। अधिकांश मानव विकास संकेतकों के मामले में दलित पिछड़े हुए हैं। इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए, बिहार सरकार ने सामुदायिक विकास कार्यक्रम, महादलित आयोग का गठन और कई कौशल विकास कार्यक्रम शुरू किए हैं। इन प्रयासों का पारंपरिक सामाजिक संरचना पर निश्चित रूप से प्रभाव पड़ता है।

[Kumar, V. **बिहार के सीमांचल क्षेत्र के दलित एवं महादलित समुदायों में सामाजिक गतिशीलता: एक समाजशास्त्रीय अध्ययन**. *The International Journal of Interpretation, Observation and Analysis*, 2023; Volume 3, Issue 1:9-13 (July-September). ISSN 2349-0713, Peer-reviewed (online/offline), Refereed, Indexed and International Journal (Since 2013), Global Impact Factor: 5.776

कीवर्ड: बिहार के सीमांचल क्षेत्र, दलित एवं महादलित, सामाजिक गतिशीलता, समाजशास्त्रीय अध्ययन

परिचय: दलित शब्द से तात्पर्य है एक ऐसा वर्ग जो शोषित, पीड़ित, दबा-कुचला, हीनता से ग्रस्त, जिसे समाज के तथाकथित उच्च वर्ग के बच्चे भी दलित वर्ग के बुजुर्गों को भी डाटने, फटकारने तथा गाली गलोज करने का पैतृक अधिकार लिये हो या यूँ कहे की जो समाज के हाशिये पर जीवन जीने को मजबूर समाज के उपेक्षित हो। समय के साथ साथ दलितों की स्थिति निम्न से निम्नतर होती चली गयी। इनके साथ भेद-भाव का स्वरूप का और विस्तार होनेलगा। इनके लिये चलने के अलग रास्ते थे। इनके लिये अलग टोले-मुहल्ले हुआ करते थे। पारंपरिक साहित्य जो मुख्य रूप से अब तक मन्दिरों और राज सभाओं में फला-फूला, वहाँ दलित समुदाय का निषेध ही रहा। साहित्य का जनतांत्रिकरण का आरंभ आधुनिक काल में हुआ, जब साहित्य के केंद्र में नायकत्व के स्वरूप में परिवर्तन आया। आम जनजीवन और साधारण व्यक्ति आधुनिक काल में साहित्य लेखन के केंद्र में आया।

पिछले एक शताब्दी से बिहार बड़े पैमाने पर किसान आंदोलनों, हिंसक प्रदर्शनों, जन एकजुटता के दमन और समाज में निरंतर अशांति का केंद्र रहा है। यह कुशासन का चरम उदाहरण भी है। कई बार ऐसा प्रतीत हुआ है कि राज्य ढहने वाला है, और केवल अधिकार या सत्तावादी शासन के माध्यम से ही राज्य को शासनीय बनाया जा सकता है। बिहार को एक उत्कृष्ट उदाहरण के रूप में भी देखा गया है विफल राज्य' का, ठीक उसी तरह जैसे यह वाक्यांश अंतरराष्ट्रीय राजनीति साहित्य में प्रयोग किया जाता है। इसे एक बार फिर इस बात के उदाहरण के रूप में देखा जाता है कि भारत में उदार लोकतंत्र संस्थागत रूप से स्थापित क्यों नहीं हो सकता।

इस कथित स्थिति से संबंधित एक कारक राजनीति में जाति का महत्व माना जाता है। जाति राजनीति के आधुनिकीकरण और लोकतंत्रीकरण में बाधा डालती है। यह सामाजिक संघर्षों के समाधान में बाधा डालती है। निश्चित रूप से, यह बिहार पर शासन करना असंभव बना देती है। यदि स्वतंत्रता के बाद के बिहार के राजनीतिक इतिहास को दो प्रमुख शब्दों में समेटना हो, तो वे निश्चित रूप से अगली जातियाँ और पिछड़ी जातियाँ होंगी। जाति व्यवस्था, जैसा कि हम जानते हैं, बिहार के समाज और राजनीति से लुप्त होने से इनकार करती रही है। राजनीति और लोकतंत्र को गतिशील ढंग से प्रभावित करने की इसकी क्षमता एक वर्ग और एक संस्था के रूप में इसके लचीलेपन को दर्शाती है। बिहार में दलित एक सामाजिक समूह है जिसमें कई अनुसूचित

जातियां शामिल हैं, जो भारत की जाति-आधारित सामाजिक व्यवस्था में सबसे निचले पायदान पर हैं। दलितों में कुछ पूर्व अछूत जातियां भी शामिल हैं, जिन्होंने बिहार के सामंती-कृषि प्रधान समाज में विभिन्न प्रकार के उत्पीड़न झेले। कुछ दलित जातियों की विशिष्ट सांस्कृतिक प्रथाएं हैं, जो रूढ़िवादी हिंदू धर्म से भिन्न हैं। स्वतंत्रता के बाद, भूमि सुधार की विफलता के कारण कृषि जातियों की तुलना में दलितों में सामाजिक–आर्थिक गतिशीलता की कमी आई। इससे दलित समर्थित नक्सली समूहों और प्रभावशाली सामाजिक समूहों द्वारा समर्थित राज्य अधिकारियों के बीच जाति–आधारित संघर्ष बढ़ गया। इसी दौरान, जमींदार वर्ग ने दलितों के अधिकारों को दबाने के लिए माओवाद के झंडे तले कई जाति–आधारित निजी सेनाएं बनाईं। रणवीर सेना जमींदारों की सबसे खूंखार जाति–आधारित मिलिशिया थी, जिसने दलितों के खिलाफ कई नरसंहार किए। हरित क्रांति और भूमि सुधार की आंशिक सफलता के कारण कुछ पिछड़ी जातियाँ जमींदार बनकर उभरीं और दलितों का उनसे संघर्ष भी हुआ। बाद के वर्षों में बिहार के दलितों में सामाजिक–राजनीतिक मुखरता देखने को मिली। 1990 के दशक के बाद बिहार सरकार ने दलितों की स्थिति सुधारने के लिए कई कल्याणकारी अभियान चलाए।

साहित्य की दलित दृष्टि की अवधारणा

दलित विमर्श वर्तमान समय की आलोचना-दृष्टियों का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा है। यह शुद्ध साहित्यिक सिद्धान्त नहीं है। इस सिद्धान्त का सम्बन्ध दलित समाज के सामाजिक-संघर्ष और आन्दोलन से जुड़ा हुआ है। हिन्दी साहित्य में दलित-विमर्श बाद में आया। पहले-पहल यह भारत की अन्य भाषाओं में विकसित हुआ। सबसे पहले इसकी शुरुआत मराठी से हुई। इसके दो कारण हो सकते हैं। पहला यह कि महाराष्ट्र में दलितों का शोषण चरम पर था। दया पवार की रचना *अछूत* इसका प्रमाण है। दूसरा महत्त्वपूर्ण कारण महाराष्ट्र में ज्योतिबा फुले और सावित्री फुले का कार्य क्षेत्र रहा। बाबा साहेब अम्बेडकर भी महाराष्ट्र से ही जुड़े थे।

साहित्य की दलित-दृष्टि की समझ बनाने के लिए भारतीय समाज में दलितों की स्थिति को समझना जरूरी है; उनकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि जानना जरूरी है इसके साथ ही अहम प्रश्न है कि वे कौन हैं? किस धर्म से सम्बन्धित हैं? वे हिन्दू हैं या नहीं? यदि वे हिन्दू हैं, जैसा कि गाँधी जी मानते थे, तब यह प्रश्न उठता है कि उनको उन सब चीजों से क्यों वंचित रखा गया, जो एक सवर्ण हिन्दू को स्वतः प्राप्त हैं? यदि वे हिन्दू नहीं हैं तो वे किस धर्म से सम्बन्धित हैं? बाबा साहेब अम्बेडकर इस प्रश्न से जिन्दगी भर जूझते रहे और अन्त में उन्होंने हिन्दू धर्म त्यागकर बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया। डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर का कहना था कि हिन्दू धर्म लोकतान्त्रिक नहीं है। नरेन्द्र जाधव ने अपनी पुस्तक 'Outcaste' में इस संघर्ष पर गम्भीरता से विचार किया। साहित्य सम्बन्धी दलित-दृष्टि उनके सामाजिक संघर्ष और सामाजिक आन्दोलन से जुड़ी है।

दलित विमर्शकार मानते हैं कि हजारो वर्ष तक समाज ने उनको अमानवीय जीवन जीने पर मजबूर किया। पर समाज-व्यवस्था ने अपनी इस गलती को कभी स्वीकार नहीं किया। आज भी उन्हें समाज में पूरी तरह वह दर्जा प्राप्त नहीं है जैसा एक सवर्ण को प्राप्त है। भारत में दलितों ने अपनी दासता को अपनी नियति मानकर स्वीकार कर लिया था। इसका कारण था कि कई पीढ़ियों से होता हुआ यह संस्कार उनके स्वभाव का हिस्सा बन गया था। उनके अन्दर की विद्रोही चेतना खत्म हो गई थी। उन्हें सवर्ण मानसिकता ने इतना संवेदनहीन बना दिया कि वे इसके खिलाफ अपनी सोच में विद्रोह नहीं करते थे। हिन्दू धर्म एक तरफ कहता है कि सब भगवान की सन्तान हैं। दूसरी ओर सामाजिक व्यवहार में उनसे दूरी बनाए रखते हैं। यह बात भारत के सभी धर्मों में थोड़ी बहुत लागू होती है। अपने सिद्धान्त और व्यवहार में प्रत्येक धर्म में यह कमी मिलती है।

इस सामाजिक बनावट के लिए मिथक गढ़े जाते हैं। इन मिथकों से दलित-जीवन उनमें बाँध दिया जाता है। उन्हें कहा जाता है कि वे अपने कर्मों का फल भुगत रहे हैं। यह भी कि इस जन्म में वे कुछ गलत नहीं करेंगे तो उनका अगला जन्म सफल होगा। समाज में बराबरी का स्थान पाने के लिए समाज में रूढ़ि बन चुके इन मिथकों को तोड़ना होगा। साहित्य की दलित-दृष्टि यही प्रयास करती है।

दलित आन्दोलन

व्यवस्था के खिलाफ अतीत में भी आवाज उठाई गई है। लेकिन वह आवाज एक नैतिक स्वर पर उठाई गई, जिसमें शोषकों के हृदय परिवर्तन पर जोर दिया गया था। हृदय परिवर्तन की बात गाँधी जी भी करते हैं। लेकिन यह परिवर्तन सीमित है, क्योंकि यह व्यवस्था को बदलने वाला नहीं है। इसीलिए बाबा साहेब अम्बेडकर नैतिक चेतना और राजनीतिक चेतना में फर्क करते हैं। विश्व इतिहास के हवाले से वे कहते हैं कि किसी भी राजनीतिक विस्तार से पहले धार्मिक और सामाजिक आन्दोलन जरूरी है। मतलब सबसे पहले दिमाग और आत्मा की मुक्ति जरूरी है। इस तरह सामाजिक और धार्मिक चेतना नैतिक चेतना का आधार बनती है। बाबा साहेब अम्बेडकर का मानना है कि पहले जितनी आवाजें जाति-व्यवस्था के खिलाफ उठीं, वे दलितों को समाज में बराबरी का स्थान दिला सकती हैं। इसके लिए जरूरी है कि दलितों की राजनीतिक चेतना भी जागृत हो। यह राजनीतिक स्तर पर ही सम्भव है। समाज की बनावट बदले बिना उनको वह स्थान नहीं मिल सकता। स्वतन्त्रता के बाद संविधान में तो उनको बराबरी का दर्जा मिल गया लेकिन उसके साथ न तो भाईचारा आया और न

ही सही मायने में आजादी। यह बात बाबा साहेब अम्बेडकर ने संविधान सभा में कही थी।

दलितों में राजनीतिक चेतना की शुरुआत ज्योतिराव फुले से मान सकते हैं। इस चेतना का विकास नारायण गुरु और पेरियार के यहाँ अधिक फली-फूली। लेकिन सही मायने में इसको राजनीतिक रूप बाबा साहेब अम्बेडकर ने ही दिया। बाबा साहेब अम्बेडकर का मानना था कि दलितों की यह नैतिक चेतना बढ़कर जब तक राजनीतिक चेतना तक नहीं पहुँचती, कोई भी बदलाव सम्भव नहीं है। उन्होंने दलितों को प्रेरित करते हुए कहा कि वे संगठित हों। अपने आप को शिक्षित करें। सवर्णवादी मानसिकता के खिलाफ संघर्ष करें। ***अधिकार लिए जाते हैं, इनायत से नहीं मिलते।***

मनुस्मृति में समाज को वर्णों में बाँट दिया गया है। लेकिन समाज में सिर्फ चार वर्ण ही नहीं हैं। व्यवहार रूप में भारतीय समाज कई जातियों और उप-जातियों में बँटा हुआ है। जाति-व्यवस्था बहुत ही जटिल है।

माना जाता है कि पहले समाज में वर्णों का विभाजन श्रम के आधार पर होता था। बाद में यह विभाजन जन्म के आधार पर होने लगा। बाबा साहेब अम्बेडकर कहते हैं कि सबसे निन्दनीय बात यह है कि इसमें सब से नीचे तबकों को अछूत करार दे दिया गया। उनकी राय में गुलाम भी हमेशा एक जैसा जीवन व्यतीत नहीं करते। वे आजाद भी हो सकते हैं। काले अमेरिकियों के साथ ऐसा ही हुआ। लेकिन 'दलित अछूत पैदा होता है और जब मरता है तब भी वह अछूत ही रहता है।' इसका अर्थ यह हुआ कि सवर्णों ने दलितों को सांस्कृतिक स्तर तक पहुँचने से वंचित रखा। अक्षर ज्ञान से भी वंचित रखा। साक्षरता की ओर उन्मुख दलित को दण्डित किया जाता। *मनुस्मृति* में एक ही अपराध के लिए सवर्णों और शूद्रों के लिए अलग-अलग सजा निश्चित की गई।

कहना न होगा कि बाबा साहेब अम्बेडकर ने जाति-व्यवस्था को दैवीय मानने से इनकार कर दिया। वे कहते हैं कि इस पवित्रताबोध और दैवीयगुणबोध को खत्म किया जाना चाहिए। अर्थात शास्त्रों की सत्ता समाप्त किए बिना जाति-व्यवस्था समाप्त नहीं हो सकती।

दलित अस्मिता का सवाल : इतिहास के हवाले से

बाबा साहेब अम्बेडकर कहते हैं कि दलितों को अपनी अस्मिता बनाने के लिए अपना अतीत बनाना पड़ेगा। क्या वे अपना अतीत हिन्दू-संस्कृति में नहीं तलाश सकते? इसे बिल्कुल अस्वीकार कर देना चाहिए? कुछ दलित विमर्शकारों ने तो इसे सिरे से अस्वीकृत कर दिया है। काँचा इलाइया की पुस्तक *Why I am not a Hindu* इस सन्दर्भ की महत्त्वपूर्ण पुस्तक है।

बाबा साहेब अम्बेडकर ने भारतीय इतिहास को नए सिरे से परिभाषित किया। उन्होंने इसमें एक धर्मनिरपेक्ष परम्परा देखी। यह परम्परा महात्मा बुद्ध से शुरू होती है। शायद बुद्ध पहले विचारक हैं जो ब्राह्मणवादी विचारधारा को चुनौती देते हैं। दलितों को समाज में स्थान दिलाने के लिए करीब एक हजार वर्ष तक बुद्ध की विचारधारा भारत में प्रचलित रही। बाद में ब्राह्मणवादी विचारधारा ने बुद्ध की धर्मनिरपेक्ष विचारधारा को विस्थापित कर उसको भारत के बाहर धकेल दिया। बुद्ध की धर्मनिरपेक्ष विचारधारा सिद्ध और नाथ परम्परा में अपने चरम पर पहुँच चुकी थी। लेकिन बाद में सिद्ध और नाथ परम्परा ने बाहरी आडम्बर और रूढ़ियाँ अपनाकर सामान्य जन से खुद को दूर कर लिया। कबीर से यह परम्परा पुनः अपने स्वाभाविक विकास की ओर बढ़ती है। सच कहा जाय तो सन्त कवियों ने इस परम्परा के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

बिहार में दलित एवं महादलित समुदायों में सामाजिक गतिशीलता मुख्य रूप से शिक्षा, सरकारी आरक्षण, और 'महादलित आयोग' (2007) जैसी नीतियों के माध्यम से बढ़ी है। राजनीतिक भागीदारी और भूमि सुधारों ने पारंपरिक सामंती संरचनाओं को चुनौती दी है, जिससे जीवन स्तर और सामाजिक स्थिति में सुधार हुआ है, हालांकि, अभी भी जाति आधारित भेदभाव और आर्थिक विषमता विद्यमान है।

बिहार में दलित/महादलित सामाजिक गतिशीलता के प्रमुख बिंदु:

- **महादलित आयोग की भूमिका:** बिहार सरकार ने दलितों में सबसे पिछड़ी 22 जातियों को 'महादलित' के रूप में चिन्हित किया, ताकि लक्षित विकास नीतियां (जैसे- जमीन, आवास, शिक्षा) लागू की जा सकें।
- **शैक्षणिक और आर्थिक सुधार:** प्राथमिक शिक्षा और छात्रवृत्ति योजनाओं ने नई पीढ़ी में साक्षरता बढ़ाई है, जिससे वे पारंपरिक कृषि मजदूरी से हटकर अन्य व्यवसायों की ओर बढ़ रहे हैं।
- **राजनीतिक सशक्तिकरण:** पंचायत और विधानसभा चुनावों में आरक्षण ने महादलित समुदायों को निर्णय लेने की प्रक्रिया में शामिल किया है।
- **चुनौतियां:** सामाजिक गतिशीलता के बावजूद, ग्रामीण क्षेत्रों में अभी भी सामाजिक सम्मान और आर्थिक आत्मनिर्भरता के लिए संघर्ष जारी है।

सामाजिक-आर्थिक संरचना:

सामाजिक-आर्थिक संरचना हमारे समाज की संरचना और विशेषताओं को समझने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। अधिकांश सामाजिक सर्वेक्षण जनसंख्या वितरण, ग्रामीण-शहरी अंतर, परिवार का आकार, आयु, लिंग, घनत्व, भाषाई विशेषताएँ, साक्षरता, व्यवसाय वितरण, आय पैटर्न और नागरिक स्थिति जैसे संकेतकों को समझने पर केंद्रित हैं।

भारतीय संदर्भ में धर्म, जाति, उपजाति और लिंग संरचना हमारे समाज की संरचना और विशेषताओं को समझने के लिए चिंता का विषय है।

इस प्रकार, व्यक्ति की सामाजिक-आर्थिक स्थिति उनके व्यावसायिक स्थिति और आजीविका की प्रकृति और स्थिति से प्रभावित और निर्धारित होती है। परंपरागत रूप से, कुछ व्यवसाय उस श्रेणीबद्ध सामाजिक पदानुक्रम से जुड़े होते हैं जिसमें व्यक्ति जन्म लेता है।

ग्रामीण क्षेत्रों में सामाजिक-आर्थिक स्थिति भारत में हिंदू सामाजिक व्यवस्था के पारंपरिक स्वरूप के अनुरूप बनी हुई है। लोगों का संपूर्ण सामाजिक-आर्थिक जीवन जाति के इर्द-गिर्द घूमता है।

भारत में दलितों की परंपरागत स्थिति द्विज जाति के अधीनस्थ और ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य जाति के लिए अछूत जैसी रही है, लेकिन अब समाज में, विशेषकर बिहार में, उनकी स्थिति बदल गई है। अस्पृश्यता ने जाति व्यवस्था के तहत अधीनता की प्रथाओं को काफी हद तक कम कर दिया है। अध्ययन के दौरान यह देखा गया है कि दलितों के सशक्तिकरण के कारण दलितों का बहिष्कार कम हुआ है और उनका समावेश बढ़ा है, जिससे भारत में दलित समुदाय मुख्यधारा में शामिल हो रहा है।

बिहार में दलितों, महादलित समुदायों के साथ हकमारी

बिहार सरकार अनुसूचित जनजाति और अनुसूचित जाति उपयोजना के तहत आवंटित धनराशि का उपयोग सड़कों, पुल-पुलिया, सरकारी भवनों और अन्य बड़े बुनियादी ढांचा आदि के लिए कर रही है। इन परियोजनाओं से इन समुदायों को कोई सीधा लाभ नहीं मिलता। दूसरी ओर जब छात्रवृत्ति या समुदाय-विशेष के कल्याण योजनाओं की बात आती है, तो सरकार फंड की कमी का हवाला देती है। यह कि राज्य सरकार ने एक के बाद एक अनेक आयोगों का गठन कर दिया है। हालांकि महिला आयोग, सवर्ण आयोग और अनुसूचित जाति आयोग के पुनर्गठनों से राजनीतिक हलकों में हलचल भी मची। दरअसल, 1974-75 की पांचवीं पंचवर्षीय योजना में तत्कालीन केंद्रीय मंत्री जगजीवन राम के प्रयास से अनुसूचित जनजाति उपयोजना की शुरुआत हुई। इसके बाद 1979-80 की छठी पंचवर्षीय योजना में अनुसूचित जाति उपयोजना लागू की गई। इनका मुख्य उद्देश्य एससी और एसटी की जनसंख्या के अनुपात में उनके कल्याण हेतु बजट में विशेष प्रावधान करना और प्रावधानित राशि का सीधा उपयोग इन वर्गों के सामाजिक, शैक्षणिक और आर्थिक विकास से जुड़ी योजनाओं के लिए करना था।

देशभर के राज्यों, जिनमें बिहार भी शामिल है, को यह सुनिश्चित करने के निर्देश हैं कि अनुसूचित जनजाति उपयोजना, अनुसूचित जाति उपयोजना के तहत आवंटित राशि का उपयोग केवल उन परियोजनाओं पर खर्च हो जिनसे इन समुदायों को प्रत्यक्ष लाभ मिले। इसके लिए योजना आयोग (वर्तमान में नीति आयोग) ने इन राशियों के लेखा-जोखा को लघु शीर्ष कोड 789 (एससी) और 796 (एसटी) के तहत रखने का प्रावधान किया, ताकि आवंटित राशियों के दुरुपयोग को रोका जा सके।

लेकिन बिहार सरकार अनुसूचित जनजाति और अनुसूचित जाति उपयोजना के तहत आवंटित धनराशि का उपयोग सड़कों, पुल-पुलिया, सरकारी भवनों और अन्य बड़े बुनियादी ढांचा आदि के लिए कर रही है। इन परियोजनाओं से इन समुदायों को कोई सीधा लाभ नहीं मिलता। दूसरी ओर जब छात्रवृत्ति या समुदाय-विशेष के कल्याण योजनाओं की बात आती है, तो सरकार फंड की कमी का हवाला देती है।

सीएजी, बिहार ने अपनी रिपोर्ट 2021-22 में बिहार सरकार पर एससी-एसटी उपयोजना की राशि को डायवर्ट करने की बात की। रिपोर्ट में कहा गया कि जिस धनराशि का उपयोग अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के कल्याण व विकास हेतु किया जाना था, उस धनराशि में से 4,518 करोड़ रुपए की राशि सड़कों के निर्माण के मद में खर्च कर दी गई। इसी तरह एससी-एसटी उपयोजना की राशि के 1191 करोड़ रुपए से सरकारी कार्यालयों का निर्माण कराया गया। करीब 1,526 करोड़ रुपए की राशि का उपयोग बांधों के रखरखाव में किया गया। एससी-एसटी उपयोजना के तहत आवंटित धनराशि में से 2,537 करोड़ रुपए सिंचाई परियोजनाओं पर और बिजली कंपनियों के अनुदान के लिए 4,518 करोड़ रुपए खर्च किए है।

पुस्तकें :

1. मुख्यधारा और दलित साहित्य, *ओमप्रकाश बाल्मीकि, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली।*
2. दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, *ओमप्रकाश बाल्मीकि, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।*
3. दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र, *शरण कुमार लिंबाले, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।*
4. दलित साहित्य, जयप्रकाश कर्दम, *वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।*

5. दलित साहित्य की अवधारणा और प्रेमचन्द, *सदानंद साही (सम्पादक), प्रेमचंद साहित्य संस्थान, गोरखपुर।*
6. भारतीय दलित साहित्य : आरम्भ और चिन्तन, *बजरंग बिहारी तिवारी, शब्दारम्भ प्रकाशन, दिल्ली।*
7. चिन्तन की परम्परा और दलित साहित्य, *सम्पादक डॉ. श्यौराज सिंह बेचैन और डॉ. देवेन्द्र चौबे, नवलेखन प्रकाशन, हजारीबाग, बिहार।*
8. Contemporary Dalit Literature, *Tanuja Trivedi, Jnanada Prakashan, New Delhi.*
9. Critical Essays on Dalit Literature, *Edited by Dr. Murali Manohar, Atlantic Publishers and Distributers, New Delhi.*

INTERNATIONAL JOURNAL OF INTERPRETATION OBSERVATION & ANALYSIS